*असली भारत को सामने लाना**

रघुराम जी. राजन

भारतीय क्रिकेट-प्रेमी अपनी पसंदीदा टीमों के प्रति व्यवहार करने में अक्सर झक्की-अवसादी होते हैं। जब उनकी टीम अच्छा प्रदर्शन करती है तब उनकी स्पष्ट दुर्बलताओं को नजरंदाज करते हुए, उसे ईश्वर की तरह मानने लगते हैं; लेकिन जब वह हार जाती है, तब वह हार उतनी ही अविश्वसनीय लगती है और प्रत्येक दुर्बलता का विश्लेषण किया जाने लगता है। वास्तव में, टीम कभी भी उतनी अच्छी नहीं होती, जितनी कि प्रशंसक उसे जीतने पर बना देते हैं, न ही वह उतनी बुरी होती है, जब वह हार जाती है। जीतते समय भी उसमें दुर्बलता थी, लेकिन उसकी अनदेखी कर दी गयी।

ऐसा लगता है कि इस प्रकार का द्विध्रुवीय व्यवहार भारत की अर्थव्यवस्था का मूल्यांकन करते समय भी किया जाता है, जिसमें विदेशी विश्लेषक भारतीय विश्लेषकों के साथ मिल कर अति उल्लास और आत्म-कशाघात के बीच डोलने लगते हैं। कुछ वर्ष पहले, भारत कोई गलती नहीं कर सकता था। टिप्पणीकार 'चिंडिया' की बात करते थे, जिसमें भारत का स्थान ऊँचा करते हुए उसके कार्य-निष्पादन को उत्तरी पड़ोसी के कार्य-निष्पादन से तुलनीय बनाया जाता था। आज भारत कुछ भी सही नहीं कर सकता।

भारत की अपनी ही समस्याएँ हैं। इसकी वार्षिक वृद्धि पिछली तिमाही में महत्वपूर्ण रूप से कम होकर 4.4 प्रतिशत पर आ गयी, मुद्रास्फीति ऊँची है, और पिछले वर्ष चालू खाता घाटा तथा बजट घाटा भी बहुत अधिक हुआ। प्रत्येक टिप्पणीकार आज भारत की घटिया आधारभूत संरचना, अत्यधिक विनियम, छोटा विनिर्माण क्षेत्र, और एक ऐसे श्रम-बल को, जो अपर्याप्त रूप से शिक्षित और अकुशल है, आलोकित करता है।

निश्चित रूप से ये कमियाँ हैं और उन्हें दूर किया जाना चाहिए, यदि भारत को मजबूत और स्थिर वृद्धि चाहिए। लेकिन यही कमियाँ तो उस समय भी थीं, जब भारत की तेज वृद्धि हो रही थी। यह समझने के लिए कि अल्पावधि में क्या कुछ करना आवश्यक है, हमें इस बात को समझना होगा कि भारत की सफलता की गाथा को किसने धूमिल किया।

आंशिक रूप में, भारत की वृद्धि में गिरावट विरोधाभासी रूप से उस प्रचुर राजकोषीय एवं मौद्रिक प्रोत्साहन को प्रतिबिंबित करती है, जिसे वर्ष 2008 के वित्तीय संकट के बाद इसके नीति-निर्माताओं ने, सभी उभरते बाजारों के सदृश इसकी अर्थव्यवस्था में अंतर्विष्ट किया। इसके परिणामस्वरूप आयी वृद्धि की लहर ने मुद्रास्फीति की अगुआई की, विशेष रूप से इसलिए क्योंकि दुनिया दूसरी व्यापक मंदी की चपेट में नहीं गयी, जैसाकि पहले आशंका व्यक्त की गयी थी। अतः, मौद्रिक नीति को कठोर बनाया ही जाना था, जिसमें उच्च ब्याज दरें निवेश और उपभोग में गिरावट में योगदान करती थीं।

इसके अतिरिक्त, भारत की संस्थाएँ तगड़ी वृद्धि की अवधि के दौरान भूमि अर्जन करने, प्राकृतिक संसाधनों का आबंटन करने, और स्वीकृति प्रदान किये जाने के लिए अभिभूत थीं। तगड़ी वृद्धि ने संसाधनों, यथा, भूमि या खनिज संपदा की दुर्लभता और मूल्य को बढ़ा दिया। अतीत में ये सब कितने सुलभ थे, इसे देखते हुए इनके त्रुटिपूर्ण आबंटन के लिए पुरस्कार प्रदान नहीं किया जा सकता था। तथापि, वृद्धि के परिणामस्वरूप भ्रष्टाचार पनपा।

इसी प्रकार, औद्योगिक विकास ने कृषि-भूमि और जंगलों के बढ़ते अतिक्रमण की और किसानों तथा आदिवासियों के विस्थापन की अगुआई की। भारत एक विकासशील देश है, जिसमें एक ऐसा नागरिक समाज रहता है, जिसके पास श्रेष्ठ विश्व की संवेदनशीलता है। राजनीतिज्ञों और सक्रियतावादियों द्वारा आयोजित विरोध प्रदर्शनों ने नये पर्यावरण कानूनों और भूमि-अधिग्रहण कानूनों की अगुआई की, जिनका लक्ष्य विकास को धारणीय बनाया जाना है। कालांतर में, भारत नये कानूनों को सरल और कारगर बनाना सीखेगा, ताकि वे अधिक

* 15 अक्तूबर 2013 को हार्वर्ड बिजनेस स्कूल (एचबीएस), बोस्टन में 'इंडिया :ऑपर्चुनिटीज एंड चैलेंजेज एहेड' विषय पर डॉ.रघुराम जी.राजन, गवर्नर, भारतीय रिज़र्व बैंक, द्वारा दिया गया लेदरबी लेक्चर।

प्रयोजनमूलक बन सकें, लेकिन अल्पावधि में इसका गौण प्रभाव नौकरशाही-जन्य अड़चनें हुई हैं, जो निवेश के संदर्भ में दिखाई पड़ती हैं। अतः, वृद्धि और उस बेलगाम वृद्धि की प्रतिक्रिया, ने भ्रष्टाचार को अधिक संभव बनाया।

सौभाग्य से, भारत जैसे स्पंदनशील प्रजातंत्र के पास अपना ही नियंत्रण एवं संतुलन होता है। भारत की जाँच एजेंसियाँ, न्यायपालिका और प्रेस ने बड़े पैमाने पर किये गये भ्रष्टाचार के आरोपों की जाँच-पड़ताल शुरू की। जैसे-जैसे इस सफाई का काम आगे बढ़ा, दुर्भाग्यवश इसका गौण प्रभाव यह हुआ कि नौकरशाही निर्णय लेने में अधिक जोखिम-विमुख हो गयी और बड़ी परियोजनाओं में गतिरोध उत्पन्न हो गया।

अभी, जबकि सरकार नयी संस्थाओं का गठन कर रही है, ताकि निर्णय लेने और पारदर्शी प्रक्रियाएँ कार्यान्वित करने का काम तेज हो सके, इन परियोजनाओं का कार्य आगे बढ़ाने के लिए मंजूरी प्रदान की जा रही है। इन परियोजनाओं के एक बार फिर से शुरू हो जाने के बाद इन्हें पूरा करने में समय लगेगा और जब ये कार्यान्वित हो जायेंगी, तब उत्पादन-वृद्धि में महत्वपूर्ण रूप से बढ़ोतरी होगी।

संकट-पश्चात् अत्यधिक (पश्चदृष्टि लाभ सहित) प्रोत्साहन दिये जाने और बड़ी परियोजनाओं में विलंब होने के दूसरे नतीजे भी हुए, यथा, उच्च स्तर का आंतरिक और बाह्य घाटा होना। संकट-पश्चात् राजकोषीय प्रोत्साहन पैकेजों ने सरकार के बजट घाटे को बहुत बढ़ा दिया, जो 2007-08 में लगभग 2.5 प्रतिशत के स्तर पर था और बढ़ कर 6 प्रतिशत से अधिक हो गया। इसी प्रकार, चूँकि खनन परियोजनाएँ विलंबित हुईं, भारत को कोयला और रद्दी लोहा के अधिक आयात का आश्रय लेना पड़ा, जबकि लौह अयस्क का इसका निर्यात कम हो गया।

स्वर्ण-आयात में बढ़ोतरी होने से चालू खाता शेष पर और दबाव आया। ग्रामीण क्षेत्रों के नव-धनाढ्य उपभोक्ताओं ने अपनी बचत का बड़ा हिस्सा सोना खरीदने में लगाना आरंभ किया, जबकि शहरों के उपभोक्ता भी, जो मुद्रास्फीति को लेकर चिंतित थे, सोना खरीदने लगे। विडंबना यह है कि यदि ये किसी पण्य की बनस्बित (भले ही वह चिरभोग्य, अर्थसुलभ और निवेशयोग्य हो) सेव के शेयरों को खरीदते, तो उनकी खरीदगी को बाह्य घाटा में जोड़े जाने की बनिस्बत विदेशी निवेश के रूप में माना जा सकता था।

बहुत हद तक, भारत की वर्तमान वृद्धि में गिरावट और इसका राजकोषीय और चालू खाता घाटा संरचनात्मक समस्याएँ नहीं है।इन्हें संयत सुधार से व्यवस्थित किया जा सकता है। यह नहीं कहा जा सकता कि महत्वाकांक्षी सुधार अच्छा नहीं होता, या वृद्धि को अगले दशक तक बनाये रखने के लिए वह अपेक्षित नहीं होता। लेकिन भारत को वर्तमान समस्याओं के निराकरण के लिए रातों-रात विनिर्माण-दानव बन जाने की जरूरत नहीं है।

तात्कालिक कार्य अधिक साधारण हैं, लेकिन उन्हें अधिक संभव ढंग से पूरा भी किया जा सकता है : परियोजनाओं को मंजूरी देना, अपर्याप्त लक्ष्यित आर्थिक सहायता को घटाना, और चालू खाता घाटा कम करने के लिए अधिक उपाय करना तथा वित्तपोषण को सहज बनाना। पिछले वर्ष से, सरकार इस कार्यसूची पर कार्रवाई कर रही है, जिसके प्रारंभिक परिणाम दिखाई देने लगे हैं। उदाहरण के लिए, उच्च निर्यात और न्यून आयात की पृष्ठभूमि में बाह्य घाटा तेजी से कम हो रहा है। सरकार और रिज़र्व बैंक का मानना है कि इस राजकोषीय वर्ष में यह घाटा 70 बिलियन अमरीकी डालर का होगा, जो पिछले राजकोषीय वर्ष के 88 बिलियन अमरीकी डालर से कम है, लेकिन हाल के आँकड़े बताते हैं कि यह इससे भी कम हो सकता है।

यह मुझे दूसरे विषय की ओर ले जाता है। चूँक विश्लेषक गहरी आर्थिक चुनौतियों को पूरा करने के लिए बड़े संरचनात्मक सुधारों की ओर नजर रखते हैं, इसलिए वे छोटे-छोटे उपायों को उपेक्षित कर देते हैं या उसे 'मरहम पट्टी' कह कर खारिज कर देते हैं। लेकिन रणनीतिक दृष्टि से किये गये छोटे-छोटे उपाय एक बेहतर शब्द के अभाव में रणनीतिक वृद्धिशीलता-भी एक साथ मिल कर तात्कालिक समस्याओं पर कार्रवाई कर सकते हैं, और इस प्रकार बड़े संरचनात्मक सुधारों के लिए समय और आर्थिक तथा राजनीतिक गुंजाइश मिल जाते हैं।

अलग तरीके से देखने पर, जब भारतीय अधिकारियों ने यह कहा कि वे पिछले वर्ष राजकोषीय घाटा को 5.3 प्रतिशत पर ले आयेंगे, तब किसीको उनपर विश्वास नहीं हुआ। अंतिम नतीजा यह हुआ कि घाटा 4.9 प्रतिशत पर आ गया। इसी प्रकार, जब हम यह पूर्वानुमान करते हैं कि चालू खाता घाटा इस वर्ष कम होकर 3.7 प्रतिशत होगा, तब मैं सोचता हूँ कि हमें इस पर सुखद आश्चर्य होना चाहिए। हमने जितनी कार्रवाइयाँ की हैं, वे सभी रुचिकर नहीं हैं, और न ही वे सभी धारणीय हैं, लेकिन उन्होंने कार्य किया है।

वस्तुतः, भारत की जीडीपी, अपनी कमियों के बावजूद, इस वर्ष संभवतः 5-5.5 प्रतिशत तक बढ़ेगी। जो बहुत बढ़िया नहीं है, लेकिन वह निश्चय ही बुरा भी नहीं है, क्योंकि आर्थिक कार्य-निष्पादन में पहले से ही यह न्यून रहा है। मानसून अच्छा रहा है और वह उपभोग को प्रेरित करेगा, विशेष रूप से ग्रामीण क्षेत्रों में, जिनमें पहले से ही तगड़ी वृद्धि हो रही है, जिसका कारण है सड़क परिवहन में और संचार-सेवाओं में सुधार होना।

बैंकिंग क्षेत्र ने निस्संदेह अशोध्य ऋणों में बढ़ोतरी का अनुभव किया है, अक्सर ऐसी निवेश परियोजनाओं के चलते, जो अव्यवहार्य तो नहीं होतीं, लेकिन उनके कार्यान्वयन में विलंब होता है। जैसे-जैसे ये परियोजनाएँ उत्पादन करने लगेंगी, वे ऋणो की चुकौती के लिए अपेक्षित राजस्व का सृजन करने लगेंगी। इस बीच भारत के बैंकों के पास हानियों का अवशोषण करने के लिए पूँजी मौजूद है।

इसी प्रकर, भारत के वित्त किसी विशिष्ट उभरते बाजार देश की तुलना में दृढ़ हैं, किसी उभरते बाजार देश के संकट को छोड़ भी दें तो। भारत के समग्र सार्वजनिक ऋण/जीडीपी अनुपात में घटने की प्रवृत्ति देखी जाती रही है, जो वर्ष 2006-07 में 73.2 प्रतिशत और वर्ष 2012-13 में 66 प्रतिशत थी (और केंद्र सरकार का ऋण/जीडीपी अनुपात केवल 46 प्रतिशत है)। इसके अतिरिक्त, ऋण रुपये में मूल्यवर्गित होता है और इसकी औसत परिपक्वता अवधि नौ वर्ष से अधिक होती है। भारत का बाह्य ऋण भार तो और भी अनुकूल है, जो जीडीपी का केवल 21.2 प्रतिशत है (इसमें से अधिकतर निजी क्षेत्र ऋण है), जबकि अल्पावधि बाह्य ऋण जीडीपी का केवल 5.2 प्रतिशत है। भारत का विदेशी मुद्रा रिज़र्व 278 बिलियन अमरीकी डालर है (जीडीपी का लगभग 15 प्रतिशत), जो कई वर्षों तक चालू खाता घाटा का वित्तपोषण करने के लिए काफी है। यदि आप सभी व्यापार ऋण और समुद्रपार भारतीयों द्वारा धारित परिपक्व होने वाली जमाराशियों को अल्पावधि ऋण के रूप में गिन लें, तो भी भारत का रिज़र्व उन सबकी चुकौती कर दे सकता है और फिर भी उसके पास धन बचा रहेगा।

इतना सब कुछ कहने के बाद यह कहा जा सकता है कि भारत बेहतर कार्य-निष्पादन कर सकता है। और अधिक बेहतर। एक अधिक खुली, प्रतिस्पर्धात्मक, दक्ष और मानवोचित अर्थव्यवस्था का पथ आने वाले वर्षों में निश्चित रूप से ऊबर-खाबड़ होगा। लेकिन अल्पावधि मे, लक्ष्य को प्राप्त किया जा सकता है।

दृष्टांत के लिए, हम अपनी वित्तीय प्रणाली का विकास करने के लिए प्रतिबद्ध हैं, और आने वाले वर्षों में वित्त तक पहुँच का सतर्कतापूर्वक विस्तार कर पाना विस्मयकारी वृद्धि का स्रोत बनेगा। हमने बड़ी आधारभूत संरचना परियोजनाएँ भी प्रारंभ की हैं। उदाहरण के लिए, दिल्ली-मुम्बई औद्योगिक कॉरीडोर, जापानी सहयोग से चलने वाली एक परियोजना, जिसमें 90 बिलियन अमरीकी डालर की आवश्यकता होगी, यह दिल्ली को मुम्बई के बंदरगाहों से जोड़ेगी, इसकी पूरी लंबाई 1,483 कि.मी. होगी और यह छह राज्यों से होकर गुजरेगी। इस परियोजना में नौ मेगा औद्योगिक क्षेत्र लगभग 200-250 वर्ग कि.मी. के होंगे, उच्च गति वाली फ्रेट लाइनें होंगी, तीन बंदरगाह, छह विमान पत्तन, एक सिक्स लेन इंटरसेक्शन एक्सप्रेसवे होगा, जो देश की राजनीतिक और वित्तीय राजधानियों को जोड़ेगा और एक 4000 एमडब्लू का पावर प्लांट होगा। हमने पहले ही आर्थिक कार्यकलाप में महत्वपूर्ण बढ़ोतरी देखी है, जब भारत ने गोल्डन क्वाड्रिलैटरल हाइवे सिस्टम का निर्माण किया। दिल्ली मुम्बई औद्योगिक कॉरीडोर के बनने से आर्थिक कार्यकलाप में बढ़ोतरी और अधिक होगी। भारत का सर्वोत्तम कार्य-परिणाम अभी आना बाकी है।

पुनः क्रिकेट सादृश्य की ओर लौटें। भारतीय समाज खुला और विवादप्रिय है। लेकिन हमारी मनोदशा में परिवर्तन होता रहता है, शायद अन्य समाज की तुलना में यह अधिक होता है, जो संभवतः हमारे उत्तेजनशील और बहुत तरुण प्रेस द्वारा अंशतः चालित होता है। भारत के बारे में जो कुछ कहा जाता है, और हम भारतीय अपने बारे में जो कहते हैं, उसके सुखाभास और नैराश्य, दोनों को यदि निकाल दिया जाये, तो यह संभवतः हमें सच्चाई के और निकट ले जायेगा।